# रामचरित्मानस

## उत्तरकाण्ड

### वानरों और निषाद की विदाई

दोहा :

*** ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति। जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति॥15॥

भावार्थ:-

वानर सब ब्रह्मानंद में मग्न हैं। प्रभु के चरणों में सबका प्रेम है। उन्होंने दिन जाते जाने ही नहीं और (बात की बात में) छह महीने बीत गए॥15॥

चौपाई :

*** बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं॥ तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए॥1॥

भावार्थ:-

उन लोगों को अपने घर भूल ही गए। (जाग्रत की तो बात ही क्या) उन्हें स्वप्न में भी घर की सुध (याद) नहीं आती, जैसे संतों के मन में दूसरों से द्रोह करने की बात कभी नहीं आती। तब श्री रघुनाथजी ने सब सखाओं को बुलाया। सबने आकर आदर सहित सिर नवाया॥1॥

*** परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥ तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई॥2॥

भावार्थ:-

बड़े ही प्रेम से श्री रामजी ने उनको अपने पास बैठाया और भक्तों को सुख देने वाले कोमल वचन कहे- तुम लोगों ने मेरी बड़ी सेवा की है। मुँह पर किस प्रकार तुम्हारी बड़ाई करूँ?॥2॥

*** ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे॥ अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥3॥

भावार्थ:-

मेरे हित के लिए तुम लोगों ने घरों को तथा सब प्रकार के सुखों को त्याग दिया। इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय लग रहे हो। छोटे भाई, राज्य, संपत्ति, जानकी, अपना शरीर, घर, कुटुम्ब और मित्र-॥3॥

*** सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना॥ सब कें प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती॥4॥

भावार्थ:-

ये सभी मुझे प्रिय हैं, परंतु तुम्हारे समान नहीं। मैं झूठ नहीं कहता, यह मेरा स्वभाव है। सेवक सभी को प्यारे लगते हैं, यह नीति (नियम) है। (पर) मेरा तो दास पर (स्वाभाविक ही) विशेष प्रेम है॥4॥

दोहा :

*** अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम। सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम॥16॥

भावार्थ:-

हे सखागण! अब सब लोग घर जाओ, वहाँ दृढ़ नियम से मुझे भजते रहना। मुझे सदा सर्वव्यापक और सबका हित करने वाला जानकर अत्यंत प्रेम करना॥16॥

चौपाई :

***सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए॥ एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे॥1॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचन सुनकर सब के सब प्रेममग्न हो गए। हम कौन हैं और कहाँ हैं? यह देह की सुध भी भूल गई। वे प्रभु के सामने हाथ जोड़कर टकटकी लगाए देखते ही रह गए। अत्यंत प्रेम के कारण कुछ कह नहीं सकते॥1॥

*** परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिधि बिधि ग्यान बिसेषा॥ प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं॥2॥

भावार्थ:-

प्रभु ने उनका अत्यंत प्रेम देखा, (तब) उन्हें अनेकों प्रकार से विशेष ज्ञान का उपदेश दिया। प्रभु के सम्मुख वे कुछ कह नहीं सकते। बार-बार प्रभु के चरणकमलों को देखते हैं॥2॥

***तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए॥ सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए॥3॥

भावार्थ:-

तब प्रभु ने अनेक रंगों के अनुपम और सुंदर गहने-कपड़े मँगवाए। सबसे पहले भरतजी ने अपने हाथ से सँवारकर सुग्रीव को वस्त्राभूषण पहनाए॥3॥

*** प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए॥ अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥4॥

भावार्थ:-

फिर प्रभु की प्रेरणा से लक्ष्मणजी ने विभीषणजी को गहने-कपड़े पहनाए, जो श्री रघुनाथजी के मन को बहुत ही अच्छे लगे। अंगद बैठे ही रहे, वे अपनी जगह से हिले तक नहीं। उनका उत्कट प्रेम देखकर प्रभु ने उनको नहीं बुलाया॥4॥

दोहा :

*** जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ। हियँ धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ॥17 क॥

भावार्थ:-

जाम्बवान् और नील आदि सबको श्री रघुनाथजी ने स्वयं भूषण-वस्त्र पहनाए। वे सब अपने हृदयों में श्री रामचंद्रजी के रूप को धारण करके उनके चरणों में मस्तक नवाकर चले॥17 (क)॥

*** तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि। अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रसबोरि॥17 ख॥

भावार्थ:-

तब अंगद उठकर सिर नवाकर, नेत्रों में जल भरकर और हाथ जोड़कर अत्यंत विनम्र तथा मानो प्रेम के रस में डुबोए हुए (मधुर) वचन बोले-॥17 (ख)॥

चौपाई :

*** सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥ मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली॥1॥

भावार्थ:-

हे सर्वज्ञ! हे कृपा और सुख के समुद्र! हे दीनों पर दया करने वाले! हे आर्तों के बंधु! सुनिए! हे नाथ! मरते समय मेरा पिता बालि मुझे आपकी ही गोद में डाल गया था॥1॥

***असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥ मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥2॥

भावार्थ:-

अतः हे भक्तों के हितकारी! अपना अशरण-शरण विरद (बाना) याद करके मुझे त्यागिए नहीं। मेरे तो स्वामी, गुरु, पिता और माता सब कुछ आप ही हैं। आपके चरणकमलों को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ?॥2॥

*** तुम्हहि बिचारि कहहु नरनहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥ बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना॥3॥

भावार्थ:-

हे महाराज! आप ही विचारकर कहिए, प्रभु (आप) को छोड़कर घर में मेरा क्या काम है? हे नाथ! इस ज्ञान, बुद्धि और बल से हीन बालक तथा दीन सेवक को शरण में रखिए॥3॥

***नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ॥ अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही॥4॥

भावार्थ:-

मैं घर की सब नीची से नीची सेवा करूँगा और आपके चरणकमलों को देख-देखकर भवसागर से तर जाऊँगा। ऐसा कहकर वे श्री रामजी के चरणों में गिर पड़े (और बोले-) हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिए। हे नाथ! अब यह न कहिए कि तू घर जा॥4॥

दोहा :

*** अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव। प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव॥18 क॥

भावार्थ:-

अंगद के विनम्र वचन सुनकर करुणा की सीमा प्रभु श्री रघुनाथजी ने उनको उठाकर हृदय से लगा लिया। प्रभु के नेत्र कमलों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥ 18 (क)॥

*** निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ। बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥18 ख॥

भावार्थ:-

तब भगवान् ने अपने हृदय की माला, वस्त्र और मणि (रत्नों के आभूषण) बालि पुत्र अंगद को पहनाकर और बहुत प्रकार से समझाकर उनकी विदाई की॥18 (ख)॥

चौपाई :

*** भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता॥ अंगद हृदयँ प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम कीं ओरा॥1॥

भावार्थ:-

भक्त की करनी को याद करके भरतजी छोटे भाई शत्रुघ्नजी और लक्ष्मणजी सहित उनको पहुँचाने चले। अंगद के हृदय में थोड़ा प्रेम नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है)। वे फिर-फिरकर श्री रामजी की ओर देखते हैं॥1॥

*** बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा॥ राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी॥2॥

भावार्थ:-

और बार-बार दण्डवत प्रणाम करते हैं। मन में ऐसा आता है कि श्री रामजी मुझे रहने को कह दें। वे श्री रामजी के देखने की, बोलने की, चलने की तथा हँसकर मिलने की रीति को याद कर-करके सोचते हैं (दुःखी होते हैं)॥2॥

***प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी। चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी॥ अति आदर सब कपि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए॥3॥

भावार्थ:-

किंतु प्रभु का रुख देखकर, बहुत से विनय वचन कहकर तथा हृदय में चरणकमलों को रखकर वे

चले। अत्यंत आदर के साथ सब वानरों को पहुँचाकर भाइयों सहित भरतजी लौट आए॥3॥

*** तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना॥ दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा॥4॥

भावार्थ:-

तब हनुमान्‌जी ने सुग्रीव के चरण पकड़कर अनेक प्रकार से विनती की और कहा- हे देव! दस (कुछ) दिन श्री रघुनाथजी की चरणसेवा करके फिर मैं आकर आपके चरणों के दर्शन करूँगा॥4॥

*** पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा॥ अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता॥5॥

भावार्थ:-

(सुग्रीव ने कहा-) हे पवनकुमार! तुम पुण्य की राशि हो (जो भगवान् ने तुमको अपनी सेवा में रख लिया)। जाकर कृपाधाम श्री रामजी की सेवा करो। सब वानर ऐसा कहकर तुरंत चल पड़े। अंगद ने कहा- हे हनुमान् ! सुनो-॥5॥

दोहा :

*** कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि। बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि॥19 क॥

भावार्थ:-

मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, प्रभु से मेरी दण्डवत् कहना और श्री रघुनाथजी को बार-बार मेरी याद कराते रहना॥19 (क)॥

*** अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत। तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत॥19 ख॥

भावार्थ:-

ऐसा कहकर बालिपुत्र अंगद चले, तब हनुमान्‌जी लौट आए और आकर प्रभु से उनका प्रेम वर्णन किया। उसे सुनकर भगवान् प्रेममग्न हो गए॥19 (ख)॥ कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि॥19 ग॥

भावार्थ:-

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! श्री रामजी का चित्त वज्र से भी अत्यंत कठोर और फूल से भी अत्यंत कोमल है। तब कहिए, वह किसकी समझ में आ सकता है?॥19 (ग)॥

चौपाई :

*** पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा॥ जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥1॥

भावार्थ:-

फिर कृपालु श्री रामजी ने निषादराज को बुला लिया और उसे भूषण, वस्त्र प्रसाद में दिए (फिर

कहा-) अब तुम भी घर जाओ, वहाँ मेरा स्मरण करते रहना और मन, वचन तथा कर्म से धर्म के अनुसार चलना॥1॥

*** तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥ बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी॥2॥

भावार्थ:-

तुम मेरे मित्र हो और भरत के समान भाई हो। अयोध्या में सदा आते-जाते रहना। यह वचन सुनते ही उसको भारी सुख उत्पन्न हुआ। नेत्रों में (आनंद और प्रेम के आँसुओं का) जल भरकर वह चरणों में गिर पड़ा॥2॥

***चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा॥ रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी॥3॥

भावार्थ:-

फिर भगवान् के चरणकमलों को हृदय में रखकर वह घर आया और आकर अपने कुटुम्बियों को उसने प्रभु का स्वभाव सुनाया। श्री रघुनाथजी का यह चरित्र देखकर अवधपुरवासी बारम्बार कहते हैं कि सुख की राशि श्री रामचंद्रजी धन्य हैं॥3॥

*** राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥ बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥4॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर तीनों लोक हर्षित हो गए, उनके सारे शोक जाते रहे। कोई किसी से वैर नहीं करता। श्री रामचंद्रजी के प्रताप से सबकी विषमता (आंतरिक भेदभाव) मिट गई॥4॥

दोहा :

*** बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग। चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥20॥

भावार्थ:-

सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए सदा वेद मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है॥20॥

## रामराज्य का वर्णन

चौपाई :

*** दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥ सब नर करहिं परस्पर प्रीती।

चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥1॥

भावार्थ:-

'रामराज्य' में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं॥1॥

*** चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥ राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥2॥

भावार्थ:-

धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत् में परिपूर्ण हो रहा है, स्वप्न में भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी रामभक्ति के परायण हैं और सभी परम गति (मोक्ष) के अधिकारी हैं॥2॥

*** अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥ नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥3॥

भावार्थ:-

छोटी अवस्था में मृत्यु नहीं होती, न किसी को कोई पीड़ा होती है। सभी के शरीर सुंदर और निरोग हैं। न कोई दरिद्र है, न दुःखी है और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणों से हीन ही है॥3॥

***सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥ सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥4॥

भावार्थ:-

सभी दम्भरहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान् हैं। सभी गुणों का आदर करने वाले और पण्डित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ (दूसरे के किए हुए उपकार को मानने वाले) हैं, कपट-चतुराई (धूर्तता) किसी में नहीं है॥4॥

दोहा :

*** राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं। काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहु हि नाहिं॥21॥

भावार्थ:-

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे पक्षीराज गुरुड़जी! सुनिए। श्री राम के राज्य में जड़, चेतन सारे जगत् में काल, कर्म स्वभाव और गुणों से उत्पन्न हुए दुःख किसी को भी नहीं होते (अर्थात् इनके बंधन में कोई नहीं है)॥21॥

चौपाई :

*** भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥ भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह

प्रभुता कछु बहुत न तासू॥1॥
भावार्थ:-
अयोध्या में श्री रघुनाथजी सात समुद्रों की मेखला (करधनी) वाली पृथ्वी के एक मात्र राजा हैं। जिनके एक-एक रोम में अनेकों ब्रह्मांड हैं, उनके लिए सात द्वीपों की यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं है॥1॥
***सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी॥ सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी॥ फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी॥2॥
भावार्थ:-
बल्कि प्रभु की उस महिमा को समझ लेने पर तो यह कहने में (कि वे सात समुद्रों से घिरी हुई सप्त द्वीपमयी पृथ्वी के एकच्छत्र सम्राट हैं) उनकी बड़ी हीनता होती है, परंतु हे गरुड़जी! जिन्होंने वह महिमा जान भी ली है, वे भी फिर इस लीला में बड़ा प्रेम मानते हैं॥2॥
*** सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला॥ राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥3॥
भावार्थ:-
क्योंकि उस महिमा को भी जानने का फल यह लीला (इस लीला का अनुभव) ही है, इन्द्रियों का दमन करने वाले श्रेष्ठ महामुनि ऐसा कहते हैं। रामराज्य की सुख सम्पत्ति का वर्णन शेषजी और सरस्वतीजी भी नहीं कर सकते॥3॥
*** सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥ एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥4॥
भावार्थ:-
सभी नर-नारी उदार हैं, सभी परोपकारी हैं और ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं। सभी पुरुष मात्र एक पत्नीव्रती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से पति का हित करने वाली हैं॥4॥
दोहा :
*** दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज। जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज॥22॥
भावार्थ:-
श्री रामचंद्रजी के राज्य में दण्ड केवल संन्यासियों के हाथों में है और भेद नाचने वालों के नृत्य समाज में है और 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए ही सुनाई पड़ता है (अर्थात् राजनीति में शत्रुओं को जीतने तथा चोर-डाकुओं आदि को दमन करने के लिए साम, दान, दण्ड और भेद- ये चार उपाय किए जाते हैं। रामराज्य में कोई शत्रु है ही नहीं, इसलिए 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिए कहा जाता है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिए दण्ड किसी को नहीं होता, दण्ड शब्द केवल संन्यासियों के हाथ में रहने वाले दण्ड के लिए ही रह गया है तथा सभी

अनुकूल होने के कारण भेदनीति की आवश्यकता ही नहीं रह गई। भेद, शब्द केवल सुर-ताल के भेद के लिए ही कामों में आता है।)॥22॥

चौपाई :

*** फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥ खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥1॥

भावार्थ:-

वनों में वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह (वैर भूलकर) एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभी ने स्वाभाविक वैर भुलाकर आपस में प्रेम बढ़ा लिया है॥1॥

*** कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥ सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥2॥

भावार्थ:-

पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते) हैं, भाँति-भाँति के पशुओं के समूह वन में निर्भय विचरते और आनंद करते हैं। शीतल, मन्द, सुगंधित पवन चलता रहता है। भौंरे पुष्पों का रस लेकर चलते हुए गुंजार करते जाते हैं॥2॥

*** लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥ ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी॥3॥

भावार्थ:-

बेलें और वृक्ष माँगने से ही मधु (मकरन्द) टपका देते हैं। गायें मनचाहा दूध देती हैं। धरती सदा खेती से भरी रहती है। त्रेता में सत्ययुग की करनी (स्थिति) हो गई॥3॥

*** प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥ सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥4॥

भावार्थ:-

समस्त जगत् के आत्मा भगवान् को जगत् का राजा जानकर पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियों की खानें प्रकट कर दीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहाने लगीं॥।4॥

*** सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥ सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥5॥

भावार्थ:-

समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से परिपूर्ण हैं। दसों दिशाओं के विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश) अत्यंत प्रसन्न हैं॥5॥

दोहा :

***बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज। मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥23॥
भावार्थ:-
श्री रामचंद्रजी के राज्य में चंद्रमा अपनी (अमृतमयी) किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं, जितने की आवश्यकता होती है और मेघ माँगने से (जब जहाँ जितना चाहिए उतना ही) जल देते हैं॥23॥
चौपाई :
*** कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥ श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर॥1॥
भावार्थ:-
प्रभु श्री रामजी ने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किए और ब्राह्मणों को अनेकों दान दिए। श्री रामचंद्रजी वेदमार्ग के पालने वाले, धर्म की धुरी को धारण करने वाले, (प्रकृतिजन्य सत्व, रज और तम) तीनों गुणों से अतीत और भोगों (ऐश्वर्य) में इन्द्र के समान हैं॥1॥
*** पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता॥ जानति कृपासिंधु प्रभुताई॥ सेवति चरन कमल मन लाई॥2॥
भावार्थ:-
शोभा की खान, सुशील और विनम्र सीताजी सदा पति के अनुकूल रहती हैं। वे कृपासागर श्री रामजी की प्रभुता (महिमा) को जानती हैं और मन लगाकर उनके चरणकमलों की सेवा करती हैं॥2॥
*** जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी॥ निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई॥3॥
भावार्थ:-
यद्यपि घर में बहुत से (अपार) दास और दासियाँ हैं और वे सभी सेवा की विधि में कुशल हैं, तथापि (स्वामी की सेवा का महत्व जानने वाली) श्री सीताजी घर की सब सेवा अपने ही हाथों से करती हैं और श्री रामचंद्रजी की आज्ञा का अनुसरण करती हैं॥3॥
*** जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ॥ कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥4॥
भावार्थ:-
कृपासागर श्री रामचंद्रजी जिस प्रकार से सुख मानते हैं, श्री जी वही करती हैं, क्योंकि वे सेवा की विधि को जानने वाली हैं। घर में कौसल्या आदि सभी सासुओं की सीताजी सेवा करती हैं, उन्हें किसी बात का अभिमान और मद नहीं है॥4॥
*** उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता॥5॥
भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा जगज्जननी रमा (सीताजी) ब्रह्मा आदि देवताओं से वंदित और सदा अनिंदित (सर्वगुण संपन्न) हैं॥5॥

दोहा :

*** जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ। राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ॥24॥

भावार्थ:-

देवता जिनका कृपाकटाक्ष चाहते हैं, परंतु वे उनकी ओर देखती भी नहीं, वे ही लक्ष्मीजी (जानकीजी) अपने (महामहिम) स्वभाव को छोड़कर श्री रामचंद्रजी के चरणारविन्द में प्रीति करती हैं॥24॥

चौपाई :

*** सेवहिं सानकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई॥ प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं॥1॥

भावार्थ:-

सब भाई अनुकूल रहकर उनकी सेवा करते हैं। श्री रामजी के चरणों में उनकी अत्यंत अधिक प्रीति है। वे सदा प्रभु का मुखारविन्द ही देखते रहते हैं कि कृपालु श्री रामजी कभी हमें कुछ सेवा करने को कहें॥1॥

*** राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥ हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा॥2॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी भी भाइयों पर प्रेम करते हैं और उन्हें नाना प्रकार की नीतियाँ सिखलाते हैं। नगर के लोग हर्षित रहते हैं और सब प्रकार के देवदुर्लभ (देवताओं को भी कठिनता से प्राप्त होने योग्य) भोग भोगते हैं॥2॥

*** अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्री रघुबीर चरन रति चहहीं॥ दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए॥3॥

भावार्थ:-

वे दिन-रात ब्रह्माजी को मनाते रहते हैं और (उनसे) श्री रघुवीर के चरणों में प्रीति चाहते हैं। सीताजी के लव और कुश ये दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका वेद-पुराणों ने वर्णन किया है॥3॥

*** दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर॥ दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे॥4॥

भावार्थ:-

वे दोनों ही विजयी (विख्यात योद्धा), नम्र और गुणों के धाम हैं और अत्यंत सुंदर हैं, मानो श्री हरि के प्रतिबिम्ब ही हों। दो-दो पुत्र सभी भाइयों के हुए जो बड़े ही सुंदर, गुणवान् और सुशील थे॥4॥

***अगला पेज...***